Indian J.Soc & Pol. 03(03):2016:59-64 **ISSN 2348-0084 (PRINT)**
(Special Print Issue: September, 2016) **ISSN 2455-2127(ONLINE)**

पंचायती राज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सन्तोष कुमार सिंह[1]
[1]प्रवक्ता (राजनीतिशास्त्र),चौरी बेलहा महाविद्यालय,तरवा,आजमगढ़, उ0प्र0,भारत

ABSTRACT

मानव स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। इसीलिए मानवीय सभ्यता के प्रारम्भ से ही गांवों का अस्तित्व दिखाई देता है। प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने से पता चलता है कि उस समय भारत के लोग अपनी विभिन्न समस्याओं का निराकरण सामूहिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर करते थे। लोगों में सामूहिक सामान्य एवं राष्ट्रीय चेतना थी जो प्रायः सभी वर्गों के लोगों में पायी जाती थी। निःसंदेह पंचायत प्रथा भारत भूमि की अटूट प्राचीन विषेषता है यह सृष्टि के प्रारम्भ से ही किस प्रकार फली–फूली है, उसके सापेक्ष आधार हमें वैदिक साहित्य में भली–भाँति मिल जाते हैं। उस समय उसे सभा समिति की संज्ञा दी जाती थी।

KEY WORDS: *पंचायती राज, गांव, ग्रामीण संरचना, सभा, समिति*

वैदिक कालीन राजनीतिक व्यवस्था में कुटुम्बों के समूह को ग्राम कहा जाता था जिसका अधिकारी ग्रामीण होता था। ग्रामीण का पद इसलिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि वह ग्राम का एक मात्र प्रशासनिक अधिकारी था। यजुर्वेद में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है–

अन्धूतमः प्रविशान्ति ये सुभन्ति मुवासते।

ततो भूव इव ते तमों य उसंमुत्वा छरताः।।

मानव सृष्टि के प्रारम्भिक काल में मानवीय जीवन को आनन्दमय बनाने के उद्देश्य से जनशक्ति एकत्रित हुई और उक्रान्त होकर 'विरांड' या वैराज की स्थपना की जिसमें सभी स्त्री– पुरूष प्रत्यक्ष भाग लेकर नियम बनाते थे। जिसे प्रारम्भिक राजविहीन शासन कहा जा सकता है। इस वैराज्य शासन का दर्शन अर्थववेद में इस प्रकार होता है।

विराड्वा इद्गम आसीत् तस्या जातायाः सर्वभविमेदिय भविष्यति।

वैराज्य अथवा राजविहिन शासन में कोई अध्यक्ष नहीं होता था। फलतः सभी व्यक्तियों को स्वतः सभी नियमों का निर्माण करना पड़ता था। जो छोटे–छोटे गांव या समाजो में ही सम्भव था। अतः इसके कार्यान्वयन में कठिनाई महसूस हुई। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए जनशक्ति पुनः उत्क्रान्त हुई और जनसभा में परिवर्तित हुई।

'रसाउद क्रमात या सामायान्व क्रामत।'

इस प्रकार ग्राम सभा के अध्यक्षों का निर्वाचन हुआ जों ग्राम का शासन करते थे। इस व्यवस्था में गांव के सभी लोगों के स्थान पर उनके द्वारा निर्वाचित थोड़े सदस्यों की ग्राम सभा की ओर गांव के लोग ने नेतृत्व से देखते थे। साथ ही गांव के सदस्य भी दायित्व के साथ अपने कर्तव्यों का सम्पादन करते थे। ग्राम सभा का कार्यक्षेत्र ग्राम तक ही सीमित एवं मर्यादित था।

इस प्रकार भारत में पंचायत प्रथा की प्राचीनता एवं सृष्टि के प्रारम्भ से ही व्यवस्था के प्रचलन के पर्याप्त साक्ष्य वैदिक साहित्य, उपनिषद्रों एवं जातक कथाओं में विद्यमान है। रामायण– महाभारत काल के साहित्य में भी यह देखने को मिलता है कि शासन के केन्द्रीय स्तर पर बड़े–बड़े साम्राज्यों की स्थापना के बावजूद प्रशासन की सुविधा के दृष्टि से प्रशासन को विभिन्न इकाइयों में विभक्त किया गया था। जिसकी सबसे छोटी इकाई ग्राम था। जिसके ऊपर दस ग्राम, विशति ग्राम, शत् ग्राम, सहस्त्र ग्राम तथा राज्य थे। मनुस्मृति के अनुसार गांव के अधिकारी को ग्रामिक कहते थे। दस गांव के ऊपर एक ओर कर्मचारी होता था जिसे दशिक के नाम से जाना जाता था। बीस गांव के कर्मचारी को विशाधिप, सौ गांव के कर्मचारी को शतपाल तथा एक हजार गांवों के ऊपर के कर्मचारी का नाम सहस्श्र पति था। मौर्यकाल में कौटिल्य(चाणक्य) द्वारा लिखित 'अर्थशास्त्र' को राजनीति पर लिखा प्रथम प्रमाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। जिसका अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय स्थानीय शासन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया

1.Corresponding Author

जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने शासन में विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाकर बड़ी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया था। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि सम्राट गुप्त ने यद्यपि भारत में बहुत बड़ा साम्राज्य पाया और एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की परन्तु उसने भी ग्राम समाज के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया। उस समय प्रत्येक गांव अपने विषयों में स्वतंत्र एवं स्वायत्तशासी थे। प्रत्येक गांव में अपनी सभा होती थी जो गांव से सम्बन्धित सभी विषयों पर वाद–विवाद कर निर्णय लेती थी।

गुप्त काल में भी स्थानीय प्रषासन प्रायः मौर्यकाल जैसा चलता रहा किन्तु राजपूत काल में ग्राम पंचायतों का महत्व कम हो गया क्योंकि उन पर सामन्तों की सत्ता स्थापित हो गयी। राजपूतों के शासन काल के पश्चात् सल्तनत काल में राज्य की सबसे छोटी इकाई गांव था। गांव का प्रबन्ध भार लम्बरदारों, पटवारियों, पंचायतों आदि पर था। इस प्रकार गांवों को अपने मामलों में काफी स्वतंत्रता मिली हुई थी। मुगलकालीन इतिहास के पन्नों को पलटने से यह प्रतीत होता है कि उस काल में भी देष में स्थानीय शासन विद्यमान था। मुगलशासकों ने इन पंचायतों के क्षेत्राधिकार में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की और न उन्हें कम करने या नष्ट करने का प्रयास किया। उसके विपरीत ऐतिहासिक सच्चाई यह है कि पंचायतों का उपयोग अपने हित में बराबर करते हुए अधिकाधिक लाभ उठाया गया।

यद्यपि भारत में स्थानीय स्वषासन अत्यन्त प्राचीनकाल से किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है फिर भी संगठन और कार्य प्रणाली की दृष्टि से उसका व्यवस्थित प्रादुर्भाव ब्रिटिष शासन के अर्न्तगत ही हुआ। स्थानीय शासन का प्रारम्भ 1687 से माना जा सकता है जब मद्रास से नगर निगम की स्थापना की गयी किन्तु गांवों के विकास की ओर सर्वप्रथम ध्यान 1863 के 'राजकीय स्वच्छता आयोग' की रिपोर्ट के बाद दिया गया। इस रिपोर्ट में भारतीय गांवों की साफ–सफाई सम्बन्धी दुर्दशा के बारे में चर्चा करते हुए कहा गया था कि गांवों के स्वच्छता पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके प्श्चात् विभिन्न राज्यों में ग्रामीण स्वच्छता अधिनियम पारित किये गये।

1882ई0 के लार्ड रीपन के प्रस्ताव द्वारा भारतीय प्रशासन को वास्तविकता एवं व्यवहारिकता कें निकट लाने का प्रयास किया गया। इसके माध्यम से स्वायत्त शासन की इकाईयों को विकसित करने के लिए उसमें चुने हुए गैर सरकारी सदस्यों को अधिक प्रतिनिधित्व देने तथा बोर्डो का अध्यक्ष बनाने का सुझाव दिया गया था। वस्तुतः इसमें गांव के स्तर पर स्वायत्त शासन के संस्थाओं के गठन की बात नहीं कही गयी थी। यह प्रस्ताव सफल नहीं हुआ क्योंकि स्थानीय प्रशासन व्यवस्था प्रान्तों को सौंप दी गयी थी। जिसके कारण वे अपनी परिस्थितियों के अनुसार उसमें संशोधन कर उसे निष्क्रिय बना दिये। इसमें व्यवस्था में नौकरशाही का नियंत्रण कम हो रहा था क्योंकि प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त लागू करना था। इसलिए नौकरशाही ने भी इसे सफल बनाने में सहयोग नहीं दिया। तमाम अवरोधों के बावजूद लार्ड रीपन का प्रस्ताव स्वायत्त शासन के गठन की दिशा में एक सार्थक पहल थी किन्तु उन्नीसवीं शताब्दीं के अंत में वायसराय लार्ड कर्जन ने इसे प्रभावहीन कर दिया। जिससे विकेंद्रीयकरण के बजाय केन्द्रीकरण को बढ़ावा मिला।

1901 से 1910 के दौरान भारत सचिव विस्काउंट मोडी ने इस बढ.ते हुए केन्द्रीकरण पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि इससे सरकार और लोगों के बीच खाई बढ. गयी है। परिणाम स्वरूप भारत में सत्ता विकेन्द्रीकरण के विकास का अध्ययन करने के लिये 1907 में चार्ल्स हाबहाऊस की अध्यक्षता में रायल कमीशन की नियुक्ति की गयी जिसकी रिपोर्ट 1909 में प्रकाशित हुई। जिसमें कहा गया कि स्वायत्त शासन के संस्थाओं की शुरूवात ग्राम स्तर से होनी चाहिऐ न कि जिला स्तर से जैसा प्रचलन में था। पंचायते ग्रामीण विकास व दिन–प्रतिदिन के क्रियाकलापों के आलावा न्याय सम्बन्धी कार्य भी करें। जिससे लोगों को कोर्ट कचहरी के चक्कर से दूर रखा जा सके। आयोगा की सिफारिश थी कि ग्रामीण जनता अपने प्रतिनिधि स्वयं चुने। फौजदारी व दीवानी मुकदमें सुनने के अलावा पंचायत गांव की सफाई का भी कार्य कर सकेगी।

1909 में अखिल भारतीय कोंग्रेस के लाहौर अधिवेशन में प्रस्ताव पारित किया गया कि सरकार ग्राम स्तर से ऊपर तक जन निर्वाचित स्थानीय निकाय स्थापित करने के लिये उचित कदम उठायें। 13 मार्च 1912 को गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा था कि जिला प्रशासन वहीं है जहां वह सौ साल पहले था तथा स्वायत्त शासन की संस्थायें भी वही की वही है जहां वे तीस वर्ष पहले लार्ड रिपन के समय में थी।

भारतीय षासन अधिनियम 1919 के द्वारा स्थानीय शासन को प्रजातान्त्रिक पद्धति के और अधिक लाने के प्रयास स्वरूप स्थानीय शासन को प्रान्तों के निर्वाचित मन्त्रियों के अधीन कर दिया गया। पंचायतो के अधिकारों एंव पर जान देते हुए कहा गया कि जहां के सफल रूप में कार्य का रही है वहां इन्हे छोटे–छोटे न्यायिक कार्य कार्यो निपटाने तथा कर लगाने का अधिकार दिया जाय जिसमें परिणाम स्वरूप आठ प्रान्तों में पंचायत अधिनियम पारित किये गये परन्तु इन तमाम कोशिशों के बावजूद स्थानिय शासन के क्षेत्र में विभिन्न कारणों वश बहुत कम प्रगति हुई।

तालाब, कुओं एवं सड़को का निर्माण, प्राथमिक शिक्षा आदि का काम भी करें। इस बात को समझते हुए कि वित्तीय साधनों के अभाव में कार्य सौपने का कोई अर्थ नहीं है। आयोग ने पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुधारनें के लिये भूमि का एक चौथाई, पंचायतों को अनुदान देने तथा न्यायिक कार्य हेतु फीस वसूल करने का अधिकार देने की सिफारिश की लेकिन आयोग की सिफारिशें कागजों तक ही सीमित रह गयी क्योंकि सरकार ने आयोग के प्रतिवेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया।

भारत सरकार अधिनियम 1935 पारित होने के उपरान्त प्रान्तों में लोकतन्त्रीय मन्त्रिमण्डलों का निमार्ण हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों का निर्माण होने लगा और स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को अधिकाधिक लोकतन्त्रीय बनाने की चेष्टा की जाने लगी किन्तु 1939 में प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों के त्याग पत्र देने के कारण स्थानीय संस्थाओं की प्रगति रूक गयी। स्वतन्त्रता पूर्व महात्मा गांधी के द्वारा गांवों का शासन गांव स्तर पर चलायें जाने तथा पंचायती राज कायम करने की बात की गयी थी उन्होने कहा कि हमारे गांवों की सेवा करने से ही सच्चे स्वराष्ट्र की स्थापना होगी अन्य सब प्रयत्न निरर्थक होगें।(यंग इण्डिया26 दिस01929)अगर गांव नष्ट हो जायेगा तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जायेगा। वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जायेगा दुनियां में उसका अपना 'मिशन' खत्म हो जायेगा।

गांधी जी द्वारा सूत्रित ग्राम स्वराज की यह अवधारणा असल में आदर्श ग्राम पंचायत की परिकल्पना प्रस्तुत करती है। गांधी जी पंचायतों को स्थानीय स्वशासन की कमोवेश आत्मनिर्भर इकाई बनाना चाहते थे।

15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्त होने के उपरान्त भारत में स्थानीय स्वशासन का नवयुग प्रारम्भ हुआ। संविधान में स्थानीय स्वायत्त शासन को राज्य सूची का विषय घोषित किया गया। संविधान के भाग चार में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद 40 में कहा गया कि ''राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिये कदम उठायेगा तथा उनमें इतनी शक्तियां तथा सत्ता सौपेंगा कि उनको स्वायत्त सरकार के इकाई के रूप में कार्य करने के योग्य बना सके।'' संविधान में स्थान मिलने के बाद ग्राम पंचायतों का गठन किया जाने लगा तथा शीघ्र ही ये लोकप्रिय होने लगी।

स्थानीय स्वायत्त शासन की दिशा में व्यवहारिक शुरूवात 1952 में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' तथा 1953 में 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' के रूप में हुई लेकिन इन योजनाओं में भी नौकरशाही को प्राप्त महत्वपूर्ण स्थिति तथा जन सहयोग के अभाव में कोई ठोस सफलता हाथ नहीं लगी।

पंचायती व्यवस्था की कठिनाईयों को दूर करने के लिये 1956 में बलवन्त राय मेहता समिति का गठन किया गया। समिति ने अपने अध्ययन में पाया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का मुख्य कारण जनता में असहयोग की भावना थी। समिति ने स्थानीय स्वायत्त शासन के सुधार के लिये निम्न सुझाव दिये–

1. त्रिस्तरीय पंचायत प्रंणाली की स्थापना की जाय जिसमें शीर्ष पर जिला परिषद बीच मे पंचायत समिति तथा निचले स्तर पर ग्राम पंचायत हो। ग्राम पंचायत के प्रधान का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से हो तथा पंचायत समिति के सदस्यो का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से ग्राम पंचायत के सदस्यो द्वारा हो ।

2. पंचायत समिति राज्य सरकार के अभिकर्ता के रूप मे कार्य करते हुए कृषि विकास पशुपालन स्वास्थ व सफाई सम्बधी कार्य करें।

3. राज्य सरकार पंचायत समितियो को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करे तथा समस्त केन्द्रीय व राजकोष जो विकास खण्ड क्षेत्र हेतु दिये गये हो पंचायत समिति द्वारा खर्च किया जाना चाहिए।

4. पंचायतो का संगठन चुनाव पर आधारित होना चाहिए जिसमे दो महिलाओं का नाम तथा एक–एक अनुसूचित जाति तथा जनजाति का सहयोजन हो ।

5. विभिन्न पंचायत समितियो मे समन्वय स्थापित करने के लिए जिला परिषद होगी जिसमें पंचायत समितियों के प्रमुख, उस क्षेत्र के लोक सभा और विधान सभा के चुने हुए सदस्य और जिला स्तर के अन्य अधिकारी होगें जिलाधिकारी उसका अध्यक्ष होगा।

6. जिला परिषद के कार्यकारी कार्य नहीं होगें। वह केवल पंचायत समितियों के बजट को स्वीकृत देगा, मांगो को सरकार कि ओर अग्रसर करेगा, सरकार से प्राप्त धन को विकास खण्डो मे वितरित करेगा, योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करेगा, समितियो के गतिविधियो का मार्ग निर्देशन आदि का कार्य करेगा।

7. समितियों के संस्तुतियों का अध्ययन केन्द्रीय सरकार के द्वारा किया गया। इस पर राष्ट्रीय विकास परिषद मे बहस हुई और प्रायः सभी सिफारिशों पर परिषद कि स्वीकृत मिल गयी। केन्द्रीय सरकार ने राज्यो को विशेषाधिकार दिया कि राज्य इस सम्बन्ध मे अपने–अपने नियम बनाये तथा अपनी इच्छानुसार पंचायती राज संस्थाओ की स्थापना करें। बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों के अनुसार राजस्थान राज्य के अनुभवों

से प्रेरित होकर 2 अक्टूबर 1959 को प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले मे दीपक जलाकर पंचायती राज का उद्घाटन किया। तद्पश्चात् देश मे पंचायती राज लागू हुआ। पंचायत व्यवस्था कुछ समय तक ठीक से कार्य की लेकिन बाद में इसमें शिथिलता आने लगी। जनता पार्टी के सत्ता मे आने के बाद 12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज का अध्ययन करने एवं प्रचलित ढाँचे में संशोधन करने हेतु अशोक मेहता समिति का गठन किया गया जिसमें पंचायती राज व्यवस्था में सुधार हेतु कुछ सुझाव दिये, जिनमें प्रमुख थे–

1. पंचायती राज का ढाँचा द्विस्तरीय होना चाहिए जिला स्तर पर जिला परिषद तथा 15 से 20 हजार कि आबादी पर मण्डल पंचायत।

2. जिला परिषद को विकेन्द्रीकरण की धुरी मानते हुए विकास का केन्द्र बिन्दु बनाया जाय।

3. पंचायती राज संस्थाओ का कार्यकाल 4 वर्ष होना चाहिए और इनके चुनाव प्रत्यक्ष रूप से होने चाहिए।

4. राजनीतिक दलों को अपने चुनाव चिन्हों के आधार पर इनके चुनाव में भाग लेने कि स्वीकृति दी जाय।

5. न्याय पंचायतों को विकास पंचायतों के साथ नहीं मिलाया जाना चाहिए यदि न्याय पंचायतों कि अध्यक्षता योग्य न्यायधीश करे और निर्वाचित न्याय पंचायत को उसके साथ सम्बद्ध कर दिया जाय तो अधिक अच्छा होगा।

6. जिलाधीश सहित जिले स्तर के सभी अधिकारी अन्ततः जिला परिषद के मातहत रखे जाय।

7. अनुसूचित जाति व जनजाति का प्रतिनिधित्व उनके जनसंख्या के आधार पर होना चाहिए।

अशोक मेहता समिति की सिफारिशे महत्वपूर्ण थी लेकिन ग्राम पंचायतो को समाप्त कर उनके स्थान पर मण्डल पंचायत गठित करने कि बात उचित नहीं थी, क्योकि ग्राम पंचायत कि समाप्ति पंचायत राज की मूल इकाई की समाप्ति थी। समिति के एक सदस्य ने इसी ओर संकेत करते हुए लिखा था कि ''मुझे जिला परिषद और मण्डल पंचायत से आपत्ति नही है किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं है जबकि पंचायती राज संस्था का धरातल तो ग्राम सभा को ही बनाया जाना चाहिए था।''(रिपोर्ट आन दी कमेटी आन पंचायती राज इन्स्टीच्यूशन्स,भारत सरकार,1928) इन्हीं विसंगतियों के कारण अशोक मेहता समिति की सिफारिशो को 1979 के मुख्यमंत्रीयों के सम्मेंलन मे अस्वीकार कर दिया गया।

पांचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सघन विकास एवं गरीबी हटाये जाने का लक्ष्य निर्धारित हुआ 5 मार्च 1985 को डॉ. जी.वी.के.राव की अध्यक्षता में 12 सदस्यों की एक समिति गठित की गयी। जिसने ग्रामीण विकास एवं गरीबी दूर किये जाने हेतु कुछ सुझाव दिया जिनमें प्रमुख थे–

1. पंचायत संस्थाओ को और अधिक क्रियाशील बनाया जाय तथा नियमित रूप से चुनाव कराये जाय।

2. पंचायती राज की संरचना त्रिस्तरीय बनाये रखी जाय।

3. नीति निर्माण के प्रयोजनार्थ जिला को प्राथमिक इकाई के रूप मे माना जाय।

4. जिला परिषद के अध्यक्ष को जिला परिषद के कार्यकाल के समान पूरे समय के लिए प्रत्यक्ष रूप से चुना जाय।

5. जिला योजना बनायी जाय जिसमें गरीबों के विकास का समुचित ध्यान दिया जाय। जिला योजना मे आय के समस्त स्रोतो का विवरण दिया जाय।

6. जिला स्तर पर विकास प्रशासन के कार्यो का निरीक्षण करने हेतु जिला विकास कमिश्नर का पद सृजित किया जाय। जिसका स्थान जिलाधीष से ऊपर हो, उसको जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी बनाया जाय।

7. मैदानी क्षेत्र में एक लाख कि आबादी के ऊपर और पहाड़ी क्षेत्रों में 50 हजार की आबादी के ऊपर विकास खण्ड निर्मित किया जाय। जिस पर 25 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति की नियुक्ति की जाय।

जून 1986 मे बलवन्त राय मेहता निधि कार्यक्रम समिति के अध्यक्ष एल.एम. सिंधवी की अध्यक्षता में 8 सदस्यो की एक समिति का गठन किया गया। जिसके द्वारा पंचायती राज संस्थाओ के बारें मे दिये गये सुझावो में प्रमुख थे–

1. गांव का पुर्नगठन किया जाना चाहिए इस प्रक्रिया मे कुछ गांव और बड़े बनायें जाने चाहिए जिससे ग्राम पंचायते अधिक व्यवहार्य बन सकें।

2. पंचायती राज संस्थाओ को स्वशासन का उपकरण माना जाना चाहिए।

3. स्थानीय स्वशासन को संविधान में एक नये अध्याय के रूप मे जोडा जाना चाहिए।

4. पंचायती राज संस्थाओ का चुनाव, स्थगन भंग किये जाने या उनके कार्यप्रणाली से सम्बन्धित किसी प्रकार के विवादो के

निस्तारण हेतु प्रत्येक राज्य मे एक राज्य न्यायाधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए।

5. उन समस्त उपायो एवं साधनो का ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे पंचायती राज संस्थाओं के आय मे बढ़ोत्तरी हो।

परन्तु आयोग कि सिफारिषे भी पूर्व के आयोगों की सिफारिशों की भाँति कागजो तक ही सिमट कर रह गयी। 1986 मे प्रधानमंत्री राजीव गॉधी के प्रधानमंत्रीत्व काल में पंचायती राज के पुर्नगठन के लिए सार्थक बहस शुरु हुई। जिसके परिणाम स्वरुप केन्द्रीय सरकार द्वारा पंचायती राज एवं नगरपालिका जैसी स्वषासन की इकाईयो के सुधार हेतु 64 वां संविधान संशोधन विधेयक संसद मे प्रस्तुत किया। जिसके कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नवत् थे–

1. पंचायती राज का ढांचा त्रिस्त्रीय होना चाहिए तथा उन राज्यो में जिनकी जनसंख्या 20 लाख से कम है मध्यम स्तर पर पंचायतो का गठन आवश्यक नहीं होगा।

2. प्रत्येक स्तर की पंचायत में 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं तथा अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए उनकी आबादी के अनुपात में आरक्षित रहेगा।

3. राज्य की संचित निधि से पंचायतों के लिए अनुदान की व्यवस्था होगी। इसके अलावा वे भी कर, शुल्क लगाकर अपने संसाधनो में वृद्धि कर सकेगीं।

4. निर्वाचन आयोग के देखरेख में प्रत्येक पांच वर्ष मे नियमित चुनाव कराये जायेगें। यदि कोई पंचायत भंग की जाती है तो उसका पुनर्गठन छः माह के भीतर निर्वाचकीय पद्धति से अवश्य करा लिया जायेगा।

5. राज्य वित्त आयोग हर पांच वर्ष की समाप्ति पर इनकी वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेगा तथा पंचायती निकाय आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाए तैयार करेगें।

6. सिंचाई, पशुपालन, पेयजल, ईधन, विद्युतीकरण, षिक्षा, स्वास्थ्य आदि के अलावा पंचायते बाल विकास, वितरण प्रणाली का सुधार, समाज के कमजोर वर्गो का कल्याण आदि कार्य भी करेगी।

यह विधेयक लोक सभा द्वारा पारित कर दिया गया लेकिन राज्य सभा में कांग्रेस का बहुमत न होने के कारण इस विधेयक को अस्वीकृत कर दिया गया।

सहभागी लोकतन्त्र (पंचायत राज) की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास 73 वें संविधान संशोधन के रूप मे किया गया। जिसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित है–

1. ग्राम, मध्यम और जिला स्तर पर पंचायत का ढांचा त्रिस्तरीय होगा। जिन राज्यों की जनसंख्या 20 लाख कम है वहां के विधानमण्डल को मध्यम स्तर पर पंचायत गठन नहीं करने का विशेषाधिकार होगा।

2. पंचायती राज संस्थाओं की अवधि पांच वर्ष होगी। अवधि समाप्त होने के छः माह के भीतर चुनाव कराना अनिवार्य होगा। पंचायत के भंग होने की स्थिति में भी छः माह के भीतर चुनाव संवैधानिक वाध्यता होगी।

3. हर स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रुप से जनता द्वारा किया जायेगा। हर स्तर पर जनसंख्या के आधार पर पंचायतों को निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जायेगा।

4. महिलाओं के लिए प्रत्येक स्तर की पंचायतों की कुल सीटों का एक तिहाई भाग आरक्षित होगा। हर स्तर पर पंचायती संस्थाओं के अध्यक्ष का पद भी महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षित होगा।

5. हर स्तर के पंचायतों संस्थाओं में अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए उस क्षेत्र मे उनकी जनंसख्या के अनुपात में सदस्य व अध्यक्ष के पद आरक्षित होगे।

6. मध्यम स्तर व जिला पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन उसके निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जायेगा। इससे यह स्पष्ट है कि पदेन सदस्य (यदि राज्य की विधि द्वारा यह व्यवस्था हो) अध्यक्ष के चुनाव मे या उसको हटाने की प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकते है। ग्राम पंचायत के निर्वाचन के सम्बन्ध में कोइ स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया बल्कि यह राज्य विधान मण्डल के ऊपर छोड़ दिया गया कि वे कानून बनाकर इनकी व्यवस्था अपनी इच्छानुसार कर सकेगे।

7. हर स्तर की पंचायती संस्था में आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र पर चक्रानुक्रम का सिद्धान्त लागू होगा। इसकी उपयोगिता यह होगी कि चुनाव मे आरक्षित सीटों और पदो हेतु आरक्षित पंचायती संस्थाएं बदल जायेगी।

8. संविधान संशोधन के लागू होने के एक वर्ष के अन्तर्गत और पुनः पांच वर्ष की समाप्ति पर हर राज्य में एक वित्त आयोग का गठन राज्यपाल द्वारा किया जायेगा। यह आयोग राज्य और हर स्तर के पंचायतो के बीच वित्तीय साधनों के वितरण के सिद्धान्त को तय करेगा। वित्त आयोग के सिफारिश के सम्बन्ध में राज्य सरकार विधान मण्डल में एक विवरण भी प्रस्तुत करेगा। ?

9. हर राज्य में एक राज्य चुनाव आयोग गठित किया जायेगा राज्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। राज्य चुनाव

आयुक्त पंचायतों के चुनाव हेतु मतदाता सूचियां तैयार करने के अतिरिक्त चुनाव के पूरी तैयारी का निर्देशन व नियन्त्रण करेगा।

10. 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम के साथ ग्यारहवी अनुसूची जोड़ी गयी। इस अनुसूची में 29 विषयों का उल्लेख है जिनका क्रियान्वयन पंचायती राज संस्थाओं को सौपा गया।

11. ग्राम स्तर पर ग्राम सभा का गठन करना अनिवार्य होगा जिसमें गाँव के सभी बालिग स्त्री–पुरुष सम्मिलित होगे। संविधान संशोधन में इस बात का भी निर्देष है कि ग्राम सभा के विभिन्न कार्यो का उल्लेख हर राज्य का विधान मण्डल पंचायती राज पर अपने कानून द्वारा करेगा।

यह संविधान संशोधन विधेयक दिसम्बर 1992 में संसद द्वारा पारित कर दिया गया परिणामस्वरुप संविधान में 9 वां भाग जोड़कर यह सुनिष्चित कर दिया गया कि पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना हेतु राज्यों के लिए 24 अप्रैल 1994 तक विधि बनाकर संविधान संशोधन के मूल तत्वों को समाविष्ट करना अनिवार्य था। अतः सभी राज्यों ने इस कार्य को निर्धारित समयावधि में पूरा कर लिया।

73 वां संविधान संषोधन अधिनियम पंचायती राज की दिशा मे मील का पत्थर सावित हुआ है। इस संशोधन के माध्यम से अब पंचायती राज संस्थाओं की निष्क्रियता समाप्त कर दी गयी है और विभिन्न प्रावधानों द्वारा संस्थाओं की सक्रिय भूमिका हेतु एक आधार तैयार किया है। कहा जा सकता हे कि 73 वें संविधान संषोधन अधिनियम 1992 के द्वारा लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त (पंचातीयराज) को राष्ट्रीय समर्थन दिया जा चुका है और अब इससे विमुख होना प्रतिगामी कदम होगा।

सन्दर्भ

महिपाल, (1956): *पंचायती राज–अतीत,वर्तमान और भविष्य,* दिल्ली, सारांश प्रकाशन,

यगइण्डिया 26.12.1929 पृ. 420।

हरिजन, 29.8.1936 पृष्ठ 226।

*रिपोर्ट ऑफ,दी कमेटी आन पंचायती राज इंस्टीट्यूशन,*नई दिल्ली,गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया,1978